AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

बिहार में कृषि की समस्यायें एवं संभावनायें

ORIGINAL ARTICLE

Author

डॉ. मुकेश कुमार राम
ग्राम– टेरूऑ, पो.–फैजुल्लाहपुर,
जिला–गोपालगंज, बिहार, भारत

शोध सार

बिहार में कृषि की दशा अत्यंत अस्थिर है और मुख्यतः मानसून पर निर्भर करती है। 2005–06 से 2009–10 के बीच खाद्यान्न उत्पादन में उतार–चढ़ाव देखा गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कृषि प्रणाली को स्थिर करने के लिए प्रभावी उपायों की आवश्यकता है। सिंचाई व्यवस्था को सुदृढ़ करना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। यह अध्ययन कृषि के वर्तमान स्वरूप, इसकी चुनौतियों और संभावनाओं पर प्रकाश डालता है, जिसमें नीति–निर्माताओं को प्रभावी सुधार रणनीतियाँ अपनाने में सहायता मिल सकती है।

मुख्य शब्द

कृषि प्रणाली, खाद्यान्न उत्पादन, मानसून पर निर्भरता, सिंचाई व्यवस्था, कृषि अस्थिरता, नीति–निर्माण.

कृषि देश की अर्थव्यवस्था का मूल आधार है। अधिकतर आबादी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि पर आश्रित है। पिछले 5 वर्षों में राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र के योगदान में वृद्धि हुई है। वर्तमान मूल्य पर वर्ष 2005–06 में कृषि, पशुपालन एवं मत्स्य क्षेत्र का योगदान 21997 करोड़ रुपये था, जो वर्ष 2010–11 में बढ़कर 45730 करोड़ रुपये हो गया फिर भी राज्य की अर्थव्यवस्था के चहुमुखी विकास के फलस्वरूप सकल घरेलू उत्पाद में कृषि, पशुपालन एवं मत्स्य क्षेत्र का योगदान 26.29 प्रतिशत से घटकर 20.99 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीय किसान आयोग ने अपने प्रतिवेदन में देश की खाद्य सुरक्षा के लिए प्रदेश में खेती के तेजी से विकास को रेखांकित किया है। भूतपूर्व महामहिम राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम ने कृषि को बिहार का कोर कम्पीटेंस कहा है। देश भर में बिहार को दूसरे हरित क्रांति का क्षेत्र माना जा रहा है। देश के हर नागरिक की थाली में बिहार के एक व्यंजन का माननीय मुख्यमंत्री जी का एक सपना है।

देश के अधिकतर राज्य सूखे से जूझ रहे हैं और बहुसंख्य ग्रामीण आबादी संकट के दौर से गुजर रही है। ऐसे में, अगर केंद्र सरकार वर्ष 2022 तक किसानों की आय दुगुनी करने की बात कह रही है, तो इससे पीछे कौन से आधार हैं, इसकी पड़ताल करना जरूरी हो जाता है।

भारत में सत्तर करोड़ लोगों की आजीविका कृषि से जुड़ी है और सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 20 प्रतिशत है लेकिन, पिछले काफी समय से भारतीय कृषि उतार–चढ़ाव से जूझ रही है। जिन इलाकों में आत्महत्या के मामले सामने आए, वे कहीं न कहीं मौजूदा ग्रामीण संकट के केंद्र में रहे हैं। ऐसे में नकारा नहीं जा सकता कि वैश्विक–स्तर पर आर्थिक मंदी और जलवायु परिवर्तन के इस दौर में कृषि नीतियां मुख्य रूप से उत्पादन क्षमता बढ़ाने, प्राकृतिक संसाधनों के किफायती उपयोग और बाजार या फिर मौसमी बदलाव से जुड़े जोखिम से निपटने वाले तंत्र

पर केंद्रित होनी चाहिए। वर्ष 2014–15 में मानसून में 12 प्रतिशत की कमी से ही फसलोत्पादन में 3.2 प्रतिशत की कमी देखने को मिली थी। हालांकि, पशुपालन के क्षेत्र में 7.3 प्रतिशत की बढ़ोतरी से काफी हद तक इस कमी की भरपाई हो गई मगर, 2015–16 में एक बार फिर मानसून ने धोखा दिया और इस बार इसमें 14 प्रतिशत की कमी देखी गई। 1901 से लेकर अब तक ऐसा चौथी बार हुआ, जब लगातार दो सालों तक देश को सूखे का सामना करना पड़ा। इसी तरह ओलावृष्टि और कहीं–कहीं बाढ़ ने भी फसलों को प्रभावित किया। जाहिर है, किसान और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर इसका असर पड़ना तय है।

एक बार फिर विभिन्न राज्यों में सूखे की ताजा स्थिति को देखें, तो न केवल कृषि, बल्कि पूरी ग्रामीण अर्थव्यस्था खतरे में घिरी हुई नजर आती है। लेकिन, यह स्थिति सूखे के कारण फसलोत्पादन में कमी होने से ही नहीं बनी है। निर्यात की जाने वाली फसलें, जैसे–बासमती चावल, कपास और रबड़ जैसे उत्पादों की कीमतें भी वैश्विक मंदी के कारण कम हुई हैं। (बिहार सरकार, पृष्ठ–29)

यह सही है कि कृषि बाजार में सुधार से किसानों की क्षमता बढ़ेगी दूसरी ओर, पारदर्शी एवं जरूरतमंदों तक पहुंच होने के कारण डीबीटी योजना एक बेहतर सपोर्ट सिस्टम के रूप में उभरकर सामने आ सकती है लेकिन, राज्यों के सकारात्मक सहयोग के बिना डीबीटी की सफलता संदिग्ध लगती है। इसके बावजूद केन्द्र सरकार राज्यों के संस्थागत ढांचे का उपयोग किए बिना इस पहल को अंजाम देना चाहती है। यह माना जा सकता है कि इस तरह की पहल से जरूरतमंदों के हक पर भ्रष्टाचार की दीमक नहीं लग पाएगी लेकिन, एक जोखिम यह भी है कि राज्यों का संस्थागत सपोर्ट सिस्टम ऐसे में और भी लचर हो जाएगा, जिसमें मुख्य रूप से देखें, तो क्रेडिट, पशुधन एवं कृषि विश्वविद्यालय शामिल हैं। संस्थागत क्षरण किसी भी तरह से दीर्घकालीन एवं टिकाऊ कृषि व्यवस्था के अनुकूल नहीं कहा जा सकता।

जहाँ तक बात किसानों के लिए राष्ट्रीय बाजार तैयार करने की है, तो इसे एक बेहतर पहल कहा जा सकता है। इसी के तहत 14 अगस्त, 2015 को 'नाम' को औपचारिक रूप से शुरू किया गया था। नेशनल एग्रीकल्चर मार्केट (नाम) सबसे विवादास्पद और अब खत्म हो चुके नेशनल स्पॉट मार्केंट का एक आधिकारिक रूप है। यह देशभर में लागू एक इलेक्ट्रोनिक पोर्टल है। 'नाम' की छतरी के नीचे सभी वर्तमान एपीएमसी मंडियों का नेटवर्क बनाया जा रहा है। नाम पोर्टल सभी एपीएमसी से जुड़ी जानकारियां देनी वाली सिंगल विंडो सर्विस है। फिलहाल आठ राज्यों की 21 मंडियों को जिंसों के ऑनलाईन करोबार के लिए इससे जोड़ा गया है। इस पर कमोडिटी की आवक, कीमतें, खरीद और बिक्री से जुड़े तथ्यों और खरीदारों के ऑफर समेत कई तरह की सुविधाएं मिल सकेंगी।

अभी तक भारत में कृषि उत्पादों का बाजार बिखरा हुआ है। हमारे यहां कृषि बाजर का संचालन एग्री–मार्केंटिंग रेगुलेशन के अनुसार राज्यों द्वारा होता है। इसके तहत राज्य को कई मार्केंटिंग एरिया में विभाजित किया जाता है और इनमें से हर एक का संचालन एक अलग कृषि उत्पाद समिति करती है। एपीएमसी इस मामले में अलग–अलग फीस के साथ अपने नियम भी थोपती हैं, जिससे किसानों को जूझना पड़ता है। एक राज्य के भीतर इस तरह के बाजार के विभाजित होने से कृषि उत्पादों की मुक्त आवाजाही बाधित होती है और किसानों को नुकसान उठाना पड़ता है। जाहिर है, लंबे समय से कुछ स्वार्थी तत्व इस तरह के नियमों का हवाला देकर किसानों का शोषण करते रहे हैं। 'नाम' इन्हीं चुनौतियों का सामना करने की दिशा में उठाया गया एक कदम है, जहां किसान अपने उत्पादों की लिस्टिंग कर सकते हैं और देशभर के व्यापारी बोली लगाकर उन उत्पादों के बेहतर दाम देकर किसानों से उसे खरीद सकते हैं। ऐसे में बिचौलियों के भूमिका खत्म हो जाएगी और किसानों को बेहतर दाम मिलने की उम्मीद की जा सकती है। हालांकि, बगैर एपीएमसी कानून की व्यवस्था वाले राज्यों को एक समान नया मंडी कानून लाना होगा, तभी ऑनलाइन कारोबार किया जा सकेगा। जिन राज्यों में एपीएमसी कानून है, उन राज्यों से प्रधानमंत्री ने अपील की है कि वे कानून में जरूरी संशोधन करें, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ई–कृषि बाजार का लाभ किसानों को मिले।

मई 2018 तक सभी गांवों में बिजली पहुंचाने का और 2019 तक देश के सभी गांवों को सड़कों से जोड़ने

का लक्ष्य रखा गया है। बिजली और सड़क जैसी आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता गांवों के साथ–साथ कृषि विकास में भी मदद्गार होगी और किसान वर्ग इससे लाभान्वित होगा। ग्रामीण भारत के लिए एक नया डिजिटल साक्षरता अभियान चलाए जाने की बात हो रही है, जिसके तहत तीन साल के भीतर छह करोड़ अतिरिक्त घरों को शामिल किया जाएगा। 'नाम' की छतरी के नीचे किसानों को लाने के लिए इस तरह की पहल उपयोगी साबित हो सकती है।

बीपीएल परिवारों को एलपीजी कनेक्शन देने के लिए 2000 करोड़ रुपये का प्रावधान भी राहत भरा है। सरकार नई स्वास्थ्य सुरक्षा योजना लांच करेगी। इसके तहत हरेक परिवार को एक लाख रुपये का हेल्थ कवर दिया जाएगा। वरिष्ठ नागरिकों के लिए यह सीमा थोड़ी बढ़ाई गई है। सरकार मार्च 2017 तक सस्ते राशन की तीन लाख नई दुकानें खोलेगी। जाहिर तौर पर ग्रामीण संकट के दौर में इस पहले से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो सकेगी।

इन सबके अलावा स्वच्छ भारत अभियान के तहत कचरे से खाद बनाने की योजना भी उपयोग कही जा सकती है। किसानों को दिए जा रहे मृदा स्वास्थ्य कार्ड भी मिट्टी की सेहत की जानकारी देने के कारगर साबित हो सकते हैं, बशर्ते किसानों तक इसकी पहुंच बनी रहे। लेकिन, सबसे पहले हमें प्राकृतिक संसाधनों के किफायती उपयोग के बारे में सीखना होगा। किसानों की आय बढ़ाने के लिए पानी, उर्वरक और बिजली के युक्तिसंगत इस्तेमाल की बेहद सख्त जरूरत है। इस बात को नीतियों में शामिल करना और उस पर सख्ती से अमल करना बेहद जरूरी है, तभी कृषि, किसान और टिकाऊ खेती का भविष्य सुरक्षित रह सकता है लेकिन, यह तभी संभव हो सकता है, जब राजनीति से प्रेरित बहस में न पड़कर सूखा पीड़ितों की मदद के साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए संवदेनशील पहल की जाए।

देश में उदरीकरण–भूमंडलीकरण की शुरूआत हुए पच्चीस साल हो गए। इस दौरान उद्योग–व्यापार को सुगम बनाने के लिए सिंगल विंडो सिस्टम, ई–कॉमर्स जैसे सैकड़ों उपाय किए गए लेकिन कृषि उपजों को कारोबार 'जहां का तहां' वाली स्थिति में ही है। इसी का नतीजा है कि जूता–चप्पल से लेकर हवाई जहाज तक बनाने वाली कंपनियां अपना सामान बेचने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन किसान अपनी उपज बेचने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। किसानों को अपनी उपज बेचने के लिए बिचौलियों का सहारा लेना ही पड़ता है और इसी का परिणाम है कि जो प्याज किसानों से पांच रुपये किलो खरीदा जाता है उसके लिए उपभोक्ता 30 रुपये किग्रा. की कीमत चुकाता है। कई बार तो किसान की लागत भी नहीं निकल पाती है। उदाहरण के लिए अगर मध्य–प्रदेश की नीमच मंडी में प्याज की थोक कीमत 30 पैसे प्रति किलो बिकता है। यही कारण है कि बई बार किसान उपज को बाजार में बेचने की तुलना में फसल को घर में पड़े–पड़े सड़ते देखना बेहतर समझता है। यही घाटे की खेती कई बार किसानों की जान तक ले लेती है। समग्रता में देखें तो खेती–किसानी बदहाली, गांवों की गरीबी, बेरोजगारी, असमानता और गांवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन का एक बड़ा कारण खेती को घाटे का सौदा होना है।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार ने 2003 में एपीएमसी कानून में संशोधन कर मॉडल एपीएमसी कानून बनाया था। यह कानून निजी व कॉरपोरेट घरानों को विपणन नेटवर्क स्थापित करने की अनुमति देता है। इसमें थोक विक्रेताओं व आढतियों के नेटवर्क को खत्म करने का प्रावधान भी है लेकिन राजस्व नुकसान और आढ़तियों की मजबूत राजनीतिक लॉबी के चलते मार्च 2016 तक मात्र 14 राज्यों ने ही अपने एपीएमसी कानून में संशोधन किया है। यहां कुछ के प्रयासों का उल्लेख प्रासंगिक होगा। आंध्र प्रदेश ने राज्य भर में चुनिंदा स्थानों पर ''रैयत बाजार'' की स्थापना की जहां किसान अपनी उपज सीधे उपभोक्ता को बेच सकते हैं। एक प्रयास आईटीसी द्वारा ''ई–चौपाल'' की स्थापना करके किया गया जिसने इंटरनेट के माध्यम से किसानों को यह सुविधा दी है कि वे अपनी उपज को सीधे सुपर मार्केट में बेच सकते हैं। आज नौ राज्यों के 50 लाख किसान इससे जुड़े हैं। इसी प्रकार डीसीएम श्रीराम कंसोलिडेटेड लिमिटेड का ''हरियाली किसान बाजार'' का हर आउटलेट 200 से 250 कामगारों को नौकरी देता है और इनमें से ज्यादातर की नियुक्ति स्थानीय इलाकों से होती है। (विश्वेश्वर दास, पृष्ठ–54)

कृषि उपजों के कारोबार को पिछड़े होने के चलते ही किसानों को उनकी उपज की उचित कीमत नहीं मिल पाती है। खेती–किसानी की बदहाली की सबसे बड़ी वजह यही है। इसी को देखते हुए सरकार ई–मंडी कानून को बहुस्तरीय बना रही है। सरकार जानती है कि सॉफ्टेवयर पर आधारित होने की वजह से ई–प्लेटफॉर्म पर मानकीकृत हिस्सों का ही व्यापार किया जा सकता है इसलिए बाकी उपज के लिए राष्ट्रीय कृषि बाजार की जगह राज्य कृषि बाजार (स्टेट एग्रीकल्चर मार्केट यानी साम) को क्रियान्वित किया जाएगा। इसे पहली बार कर्नाटक में लागू किया है इसके तहत किसान ई–प्लेटफॉर्म के रूप में व्यापार करने वाली इस मंडी में आते हैं। किसानों और व्यापारियों के बीच सदस्यों के रूप में आढ़ती–बिचौलिये भी होते हैं। मान्यता प्राप्त मूल्यांकन कर्ताओं द्वारा अपनी उपज को श्रेणी, गुणवत्ता और स्तर को प्रमाणित कराने के बाद किसान उस मंडी में अपनी उपज की बिक्री करते हैं जहां सबसे अच्छी कीमत मिलती है। सौदा होने के बाद नेटवर्क से जुड़े बैंकों से उनका भुगतान किया जाता है। इस व्यवस्था के कारण कर्नाटक में किसानों की पहुंच अधिक खरीदारों, खाद्य प्रससंकरण उद्यमियों और फुटकर दुकानदारों तक हुई। इससे किसानों को उनकी उपज की अच्छी कीमत मिलने लगी।

ऑनलाइन व्यापार तक आसान पहुंच से किसानों की आय बढ़ेगी, बाजार में उत्पादों की बेहतर उपलब्धता होगी जिससे कीमतों में कमी आएगी। पूरे देश को एक मंडी क्षेत्र में बदलने की सरकार की योजना दरअसल 2022 तक किसानों की आदमनी दो गुना करने की रूपरेखा का हिस्सा है। सबसे बड़ी बाधा कृषि उपज के वजन, ग्रेडिंग और मानकीकरण के नेटवर्क की कमी की है। उल्लेखनीय है कि देश में उपज की क्वालिटी में अंतर के कारण कीमतों में भारी अंतर पाया जाता है। उदाहरण के लिए पिछले साल मई महीने में देश के विभिन्न मंडियों में ज्वार की कीमतों में 282 प्रतिशत तक का अंतर रहा। यही स्थिति दूसरी फसलों की भी है। कुदरती आपदाओं के कारण उपज की गुणवत्ता में अंतर और भी बढ़ जाता है। स्पष्ट है मंडियों को आधुनिक बनाए बिना राष्ट्रीय कृषि बाजार व राज्य कृषि बाजार (नाम–साम) कामयाब नहीं होंगे। बिहार व केरल में मंडी कानून न होना एक समस्या हैं इसी तरह क्वालिटी पर विवाद होने की दशा में इसका समाधान कैसे किया जाएगा और गारंटी पार्टी कौन होगा जैसे सवाल भी अनसुलझे हैं। सबसे बड़ी बाधा यह है कि क्या आढ़तियों ओर जमाखोरों की मजबूत राजनीतिक लॉबी राज्य सरकरों को मंडी आधुनिकीकरण करने देगी? इसी तरह की एक बाधा छोटे किसानों को ई–मंडी से जोड़ने की भी है। उल्लेखनीय है कि देश में 85 प्रतिशत किसान लघु व सीमांत किसान की श्रेणी में आते हैं। गांवों में कम्प्यूटर–इंटरनेट की सीमित पहुंच और निरक्षरता भी राष्ट्रीय कृषि बाजार में बाधा खड़ी करेंगी। इन्हीं बाधाओं के चलते योजना को चरणबद्ध तरीके से लागू किया जा रहा है।

किसानों और कृषि क्षेत्र को अक्सर उत्पादन से संबंधित बदलावों और मूल्य की अस्थिरता जैसी समस्याओं से दो–चार होना पड़ता है। जलवायु परिवर्तन की वजह से होने वाली मौसम की असामान्यताएं बढ़ रही हैं और मौसम की असामान्य स्थितियों के कारण अक्सर सामान्य संस्थागत सहायता अपर्याप्त और कम पड़ जाती है। भारत में मौसम की ऐसी असामान्य स्थितियां बढ़ रही हैं और दनकी वजह से लाखों किसान परिवारों के कल्याण के लिए मजबूत प्रयास किया जाना बेहद आवश्यक हो गया है। किसानों के कल्याण के मामले पर आगे बढ़ने से पहले कई पहलुओं पर गौर किया जाना आवश्यक है। जब किसानों के कल्याण के उपाय सही दिशा में बढ़ेंगे, तो उनके साथ ही साथ औद्योगिकीय सुधारों और प्रौद्योगिकी का सृजन होगा, ताकि किसानों को ज्यादा आमदनी उपलब्ध कराई जा सके और साथ ही साथ अनाज और अन्य जिंसों की बढ़ती मांग पूरी की जा सके। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2020–21 तक अनाज की अनुमानित मांग 277 मिलियन और तिलहनों की मांग 71 मिलियन तक पहुंच जाएगी। यूँ तो अनाज और खाद्यान्न में वृद्धि की मौजूदा स्थिति के साथ इस मांग के पूरा हो जाने की संभावना है, लेकिन दलहन में कुछ कमी और सब्जियों/खाद्य तेलों में बेतहाशा कमी होने का अंदेशा है, जहां घरेलू खपत से जुड़ी करीब 60 प्रतिशत जरूरतें आयात के माध्यम से पूरी होती हैं। (विक्रम गोस्वामी, पृष्ठ–57)

संगठन सम्बन्धी समस्याएँ

भूस्वामित्व: कृषि के विकास में भूमि स्वामित्व का प्रतिरूप विशेष महत्व का है। विकासशील देशों में बड़े फार्म

अधिकतर रोपण कृषि के बागान (Plantations) हैं जिनमें एक व्यक्ति या कम्पनी का भूस्वामित्व होता है तथा स्थानीय लोग कृषि–मजदूर होते हैं। अब अधिकतर फार्म स्थानीय लोगों के हो गये हैं किन्तु कृषि मजदूर की परम्परा चल रही है।

छोटे फार्मों में कुछ तो स्वयं किसानों के पास है किन्तु ऐसे फार्मों की भी कमी नहीं है जिनके मालिक न खेत पर रहते हैं, और न कृषि कार्य करते हैं, वे बटाई या किराये पर फार्म देते हैं। यह किराया इतना अधिक होता है कि किसान का जीवनस्तर तो नीचा रहता ही है, उसके पास न तो भूमि–विनियोग के लिए पूँजी होती है और न उसकी प्रेरणा। फसल नष्ट होने पर भी उसे किराया देना होता है।

अनेक एशियाई देशों में पिछले वर्षों से यह प्रयत्न हो रहे हैं कि किसानों को भूमि का कम किराया देना पड़े। यह आवश्यक हो गया है कि कानून द्वारा किराये का निर्धारण हो। (विक्रम गोस्वामी, पृष्ठ–17)

कृषि भूमिस्वामित्व पर प्रतिबन्ध हो यह भी उपर्युक्त समस्या का समाधान है। सघन जनसंख्या वाले देशों में जहाँ कृषि भूमि का अनुपात बहुत कम है यह नीति आवश्यक है, किन्तु अफ्रीकी तथा लैटिन अमेरिका देशों में अधिकाधिक भूमि कृषि के अन्तर्गत लाये जाने की आवश्यकता है।

कृषि–उत्पादन का विक्रय मूल्यः कृषि–उत्पादन के मूल्य निर्धारण का महत्त्व दो पक्षों में विशेष रूप से है। जिन वस्तुओं का निर्यात होता है उनका मूल्य स्थानीय बाजार में असाधारण रूप से बढ़ जाता है, यह साधारणतः देखा जाता है। सरकार द्वारा मूल्य निर्धारण आवश्यक हो जाता है। दूसरे, यदि माँग की तुलना में उत्पादन कम होता है तो मूल्य बढ़ते जाते हैं तथा नियन्त्रण न किया जाये तो जनसाधारण की आवयकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती।

किसानों की दृष्टि से मूल्य निर्धारण इसलिए भी आवश्यक होता है कि उनको लागत के अनुरूप मूल्य मिले। भारत में पिछले वर्षों में सरकार ने कृषि उत्पादन का व्यापार आरम्भ किया है जिससे गेंहूँ–चावल आदि के मूल्य पर नियंत्रण हुआ है। गन्ने के मूल्य निर्धारण से शक्कर की फैक्टरियों को शक्कर निर्धारित मूल्य पर देनी होती है। इससे किसान को अपने उत्पादन का उचित मूल्य मिल जाता है और उन्हें अधिकाधिक उत्पादन की प्रेरणा मिलती है।

सरकारी नीति यह भी रहती है कि किसानों को उचित मूल्य पर उर्वरक, कीटाणुनाशक रसायन, यन्त्र, सिंचाई का जल दिया जाये जिससे उनका उत्पादन मूल्य कम रहे और उन्हें वैज्ञानिक ढंग अपनाने के लिए प्रोत्साहन मिले।

बाजारः विक्रय क्षेत्र का सुधार तथा उपभोक्ता को कृषि–उत्पादन की प्राप्ति विकासशील देशों की एक गम्भीर समस्या है। दूसरी ओर व्यापारियों के स्थान पर किसान को समुचित लाभ हो यह व्यवस्था भी आवश्यक है। सरकार समुचित परिवहन मार्ग बनाए, भण्डार का प्रबन्ध करे, उत्पादन को उतमता के अनुसार छाँटने का प्रबन्ध करे तथा प्रसारण तन्त्र द्वारा विक्रय सम्बन्धी सूचनाएँ प्रसारित करे।

अधिकतर विकासशील देशों में उपयुक्त पक्षों का समुचित विकास नहीं हुआ है। कृषि उत्पादन का विक्रय व्यापारी अधिक करते हैं इस प्रथा में अनेक त्रुटियाँ हैं। विशेषरूप से वे फसल आने पर उत्पादन खरीद कर अन्य समय अधिक मूल्य पर बेचते हैं। यदि भंडार की समुचित व्यवस्था किसानों के पास हो तो यह ऐसे व्यापारियों के शिकंजे से बच सकता है। साथ ही यदि परिवहन की समुचित सुविधा हो तो विस्तृत बाजार में उत्पादन पहुँचाया जा सकता है किन्तु वर्तमान विक्रय प्रणाली को समाप्त करके नयी प्राणाली स्थापित करना दुराग्रह होगा। नयी प्रणाली को पूरक के रूप में विकसित करना सरल होगा।

अनेक विकासशील देशों में तकनीकी क्षमता, पूँजी तथा प्रबन्धकों की कमी रहती है जिससे बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन का विक्रय तथा बाजार तक परिवहन सम्भव नहीं हो पाता।

कृषि सम्बन्धी ज्ञान का प्रसारणः यहाँ शिक्षित वर्ग की कमी एक गम्भीर समस्या है। यह वर्ग नगरों में केन्द्रित हैं तथा अधिकतर कृषि के अतिरिक्त अन्य आर्थिक कार्यों में लगा है। अतः साधारणतः किसान अशिक्षित तथा कृषि के विकास से अनभिज्ञ हैं। अज्ञानता के कारण सरकारी सुविधाएँ, बैंकों से ऋण, बाजार सम्बन्धी ज्ञान से भी वे वंचित रहते हैं, सूचना तथा प्रसारण की सुविधाओं का भी वे उपयोग नहीं कर पाते। इन विकासशील देशों में कृषि

का विकास बहुत तीव्र गति से तथा किसानों के एक बड़े वर्ग द्वारा अपनाया जा सकता है, यदि किसान शिक्षित हों, संसार के अन्य भागों में होने वाले विकास के प्रति जागरूक हों तथा रूढ़िगत ढंगों को छोड़ कर कृषि के वैज्ञानिक ढंग अपना सकें। (कुरूक्षेत्र, पृष्ठ–20)

भौतिक समस्याएँ

वर्षा: यहाँ की कृषि के लिए सबसे गम्भीर समस्या मानसून की प्रकृति है। उष्ण कटिबन्ध में स्थित होने के कारण भारत में तापमान सालभर पर्याप्त ऊँचा रहता है। यदि पर्याप्त जल मिलता रहे तो साल में कई फसलें पैदा करना कठिन नहीं है किन्तु अभाग्यवश वर्षा यहाँ केवल 3–4 महीने होती है, अन्य महीने लगभग सूखे रहते हैं, आकाश स्वच्छ रहता है तथा पर्याप्त वाष्पीकरण होता है। अतः वर्ष भर की कृषि की भाग्य–विधाता यह चार महीने की वर्षा ही है।

वर्षा काल में भी वर्षा का प्रति वर्ष समान वितरण नहीं होता। मानसून के आने का समय साधारणतः निश्चित है, किन्तु किसी वर्ष यह जल्दी आ जाता है अथवा वर्षा–काल समय से पहले समाप्त हो जाता है। ऐसे वर्ष भी होते हैं जब वर्षा–काल के बीच पर्याप्त समय के लिए सूखा मौसम हो जाता है। वर्षा की यह अस्थिरता फसलों को बहुत हानि पहुँचाती है। ऐसे वर्षों में उत्पादन औसत से बहुत कम हो जाता है।

अति वर्षा एक अन्य गम्भीर समस्या है जो पुनः मानसून की विशेषता है। इसी कारण विस्तृत प्रदेशों का जलमग्न हो जाना एक साधारण घटना है। यह समस्या उत्तर भारत में अधिक गम्भीर है। हिमालय में औसत वर्षा अधिक होती है। अति वृष्टि के कारण यह अतिरिक्त जल नदियों में आता है तथा तटीय प्रदेशों के अपेक्षाकृत नीचे भागों में बाढ़ आ जाती है। बिहार, उत्तर प्रदेश एवं बंगाल के किसी–न–किसी भाग में बाढ़ लगभग प्रतिवर्ष आ जाती है। यह मैदान असाधारण रूप से समतल है, नदियों के किनारे अधिक ऊँचे नहीं है। तलहटियो में निक्षेपण होने से नदियाँ छिछली भी होती जाती है। दक्षिण भारत में केवल पूर्वी तथा पश्चिमी तटीय मैदानों में ही बाढ़ एक गम्भीर समस्या के विकराल रूप धारण करने का एक अन्य कारण यह भी है कि पिछले दशकों में विस्तृत वन–प्रदेश साफ कर दिये गये हैं। यह परिवर्तन, विशेषरूप से पर्वतीय प्रदेशों में हानिकारक होता है। यह एक ओर मिट्टी के काटव की गम्भीर समस्या को जन्म देता है और बाढ़ को बढ़ाता है। अतः इस समस्या के समाधान भी बहुमुखी हैं। वनरोपण, नदियों के बाँध बनाकर जल को विभिन्न मार्गों में बहाना एवं भूमि संरक्षण ये विधियाँ हैं जिनसे विस्तृत कृषि प्रदेशों और उनके उत्पादन को नष्ट होने से बचाया जा सकता हैं।

राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याएँ

प्राकृतिक समस्याओं के समान ही हमारे देश की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न कृषि सम्बन्धी समस्याएँ हैं। ब्रिटिश काल के भूमि अधिकार की पद्धतियों ने किस प्रकार कृषि की नीवें खोखली कर दी और किसान को निर्धनता के पथ पर अग्रसर किया ब्रिटिश काल की सबसे अधिक क्षति पहुँचाने वाली नीति थी देश का विभाजन। भारत और पाकिस्तान के विभक्त होने से देश की आर्थिक प्रणाली बहुत असंतुलित हो गई और इसका प्रभाव कृषि एवं खाद्य उत्पादन पर भी पड़ा। पाकिस्तान को ब्रिटिश भारत का 1/7 कुल बोया हुआ क्षेत्र तथा 1/3 सिंचित प्रदेश मिला। जनसंख्या की दृष्टि से भारत को अपेक्षाकृत कम कृषित भूमि मिली। 7.4 करोड़ एकड़ चावल के कृषि प्रदेश में से 1.9 करोड़ एकड़ और गेंहूँ के 3.4 करोड़ एकड़ में से 0.95 करोड़ एकड़ भूमि पाकिस्तान को चली गईं तिलहन, शक्कर, तम्बाकू एवं चाय के उत्पादक प्रदेशों के 1/8 भाग भारत से अलग कर दिये गये। जूट एवं कपास के कृषि–प्रदेशों के प्रमुख भाग पाकिस्तान को प्राप्त हुए। इस प्रकार कृषि प्रदेश के विभाजन का विपरीत प्रभाव इसलिए हुआ कि पश्चिमी पाकिस्तान को अधिकतर बिरली जनसंख्या और अतिरिक्त उत्पादन वाले प्रदेश मिले, जबकि अधिकतर कारखाने भारत में ही थे। अतः विभाजन के पश्चात् शीघ्र ही भारत में कृषि उत्पादन–खाद्यान्न एवं कच्चे माल की बहुत कमी हो गई। भारत के सम्मुख यह एक गम्भीर समस्या थी कि विभाजन के कारण हुई कृषि उत्पादन की क्षति को किस प्रकार पूरा किया जाये।

भूस्वामित्वः कृषि सम्बन्धी सामाजिक समस्या की गाठँ थी भूमि– अधिकार पद्धतियाँ जो भारत के भिन्न–भिन्न भागों में भिन्न–भिन्न थीं इनके प्रचलन का मुख्य लक्ष्य यह था कि ब्रिटिश सरकार को लगान समय पर निश्चित मात्रा में मिलता रहे किन्तु कृषि–विकास अथवा कृषि–नियोजन के लिए ये प्रणालियाँ अधिक उपयोगी नहीं थी। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार देश में 1257 लाख कृषि मजदूर थे, जिनके पास भूमि नहीं थी। दूसरी ओर अन्य बड़ी संख्या उन भूमिधारियों की थी जो किराये पर भूमि देकर खेती करवाते थे। कृषि उनकी जीविका का साधन अवश्य था, किन्तु उसके विकास की ओर उनका ध्यान नहीं था। आँकड़ों के अनुसार सन् 1951 में 3438 लाख एकड़ भूमि ऐसी थी जो मध्यस्थों के हाथ में थी, जिससे जमींदार–ताल्लुकेदार आदि सम्मिलित थे। कृषि–उत्पादन का लाभ उन्हें अवश्य मिलता था, किन्तु कृषि विनियोग की ओर अथवा विकास की ओर उन्होने कभी ध्यान नहीं दिया। यह भी एक बड़ा कारण था कि कृषि पद्धतियों में शतकों से कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इस प्रकार विभाजन के समय कृषि की आर्थिक प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन करने की एक बड़ी समस्या देश के सामने थी। इनके निदान हेतु जमींदारी उन्मूलन प्रथा, जोत के आकार पर नियन्त्रण (सीलिंग) सम्बन्धी कानून बनाये गए। उचित लगान निर्धारण तथा मौसमी कृषकों की सुरक्षा की भी कोशिश की गई।

जोतों का छोटा और बिखरा होनाः सामाजिक प्रथा के अनुसार यहाँ कृषि–भूमि सम्पत्ति का एक भाग है जो संतति में बँटती जाती है। फलस्वरूप, समय के साथ–साथ भूमिधारी के पास भूमि धीरे–धीरे छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित होते हुए, कम होती जाती है। साथ ही प्रत्येक भूमिधारी की भूमि गाँव के विभिन्न भागों में बिखरी होने के कारण खेतों का आकार और भी छोटा होता गया है। सन् 2009–10 की गणना के अनुसार देश में 57.8 प्रतिशत जोत 1.0 हेक्टर से कम, तथा अन्य 18.4 प्रतिशत 1 से 2 हेक्टर के बीच थे। (आर.के. समान्ता एण्ड एम. जे. चन्द्रा, पृष्ठ–26)

निष्कर्ष

बिहार में कृषि क्षेत्र संभावनाओं से भरपूर होने के बावजूद कई चुनौतियों का सामना कर रहा है। मानसून पर अत्याधिक निर्भरता, सिंचाई की अपर्याप्त व्यवस्था, भूमि सुधार की धीमी गति और किसानों की आर्थिक अस्थिरता कृषि के सतत् विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

हालांकि, सरकारी योजनाएँ, तकनीकी प्रगति और वैकल्पिक कृषि पद्धतियॉ राज्य में कृषि सुधार की दिशा में आशाजनक संकेत प्रदान कर रही हैं। यदि सिंचाई प्रणाली का विस्तार किया जाए, किसान जागरूकता बढ़ाई जाए और आधुनिक तकनीकों को अपनाने के लिए सुविधाएँ दी जाएँ, तो कृषि क्षेत्र न केवल आत्मनिर्भर बनेगा, बल्कि राज्य की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ करेगा इसलिए, बिहार की कृषि न केवल समस्याओं से जूझ रही है, बल्कि अपार संभावनाओं से भी भरी हुई है। समुचित नीति–निर्माण, किसानों को सहयोग और प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी उपयोग इसे भविष्य में अधिक उन्नत बना सकता है।

संदर्भ सूची

1. बिहार सरकार (2003), नई औद्योगिक नीति, 2003, पृ. 29।
2. दास, विश्वेश्वर (2006) *बिहार की भौतिक अधिसंरचना,* नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 54।
3. गोस्वामी, विक्रम (2012) *आधुनिक कृषि का सिद्धांत,* डिसकवरी पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 57।
4. गोस्वामी, विक्रम (2012) *कृषि प्रसार के सिद्धांत,* डिसकवरी पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 17।
5. प्रसाद, बी. के. (2015) बिहार की कृषि संरचना, *कुरूक्षेत्र,* मार्च 2015, अंक 05, पृ. 20।
6. समान्ता, आर.के. एवं चन्द्रा, एम. जे. (2012) *कृषि विज्ञान केन्द्र,* दि कैपीसिटी बुइल्डर ऑफ फारमर, बी. आर. पब्लिसिंग, गोण्डा, पृ. 26।

––==00==––